International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Volume 14, Issue 2, March-April

प्रेमचंद जी के उपन्यासों में दलित विमर्श की अवधारणा का अध्ययन

सौम्य एस[1], डॉ. निशा मिश्रा[2]

[1]शोधकर्ता, इतिहास हिंदी, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी, म.प्र.
[2]सहायक प्रोफ़ेसर, इतिहास हिंदी, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी, म.प्र.

सारांश

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में दलित विमर्श भारतीय समाज की जातिगत संरचना, सामाजिक असमानता और मानवीय गरिमा के प्रश्नों का सशक्त प्रतिपादन है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से वंचित, शोषित और निम्नवर्गीय समुदायों के जीवन-संघर्ष को यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया। गोदान, कर्मभूमि, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, जैसे उपन्यासों में सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण, जातिगत भेदभाव और नैतिक संघर्ष के विविध आयाम उभरते हैं। यद्यपि प्रेमचंद के समय में 'दलित विमर्श' एक संगठित साहित्यिक आंदोलन के रूप में स्थापित नहीं था, तथापि उनके उपन्यासों में दलित चेतना के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। उन्होंने दलित पात्रों को दया के पात्र के रूप में नहीं, बल्कि संवेदनशील, संघर्षशील और आत्मसम्मान से युक्त मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया। उनके उपन्यास सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय मूल्यों की स्थापना की दिशा में वैचारिक हस्तक्षेप करते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद का उपन्यास-साहित्य दलित विमर्श की वैचारिक पृष्ठभूमि को मजबूत आधार प्रदान करता है।

मुख्यशब्द- प्रेमचंद जी, उपन्यास, दलित विमर्श, जातिगत संरचना, मानवीय गरिमा, जीवन-संघर्ष, जातिगत भेदभाव, नैतिक संघर्ष, आत्मसम्मान

प्रस्तावना

प्रेमचंद ने एक दर्जन से अधक उपन्यासों की रचना की है। कहानियों की तरह इनके उपन्यास भी पाठकों को मानव हृदय की गहराईयों तक ले जाते हैं। अपने उपन्यासों में इन्होंने किसान, स्त्री और दलित विषयों के साथ विभिन्न समस्याओं के महत्वपूर्ण पहलुओं को छूआ है। यहाँ हम दलित समस्याओं से जुड़े कुछ उपन्यासों के दलित पात्रों का विश्लेषण कर रहे हैं।

गोदान
किसान जीवन की पहचान बन चुका यह उपन्यास प्रेमचंद साहित्य की अमूल्य धरोहर मानी जाती है। होरी पिछड़ी जाति का एक गरीब किसान है, जो किस्मत की मार से मजदूर बन जाता है। घर के द्वार पर पछाई गाय बाँधने की इच्छा से उपन्यास विकसित होता है और फिर इसका अंत भी इसी अपूर्ण इच्छा के साथ होता है।

प्रेमचंद ने उसकी जाति का खुलकर उल्लेख नहीं किया है। परन्तु उपन्यास में पंडित दातादीन ने उसे शूद्र कहा है। इससे प्रतीत होता है कि वह किसी पिछड़ी जाति का ही रहा होगा। वह पाँच बीघे का किसान है, घर में पाँच लोगों के पेट पालता है और सदैव कर्ज में डूबा रहता है। उसके घर की यह स्थिति उसकी हालत को बयां करती है।

श्होरी की सारी की सारी फसल दांड की भेंट हो चुकी थी। बैसाख तो किसी तरह कटा। मगर जेठ लगते लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पाँच-पाँच पेट खाने वाले और घर में अनाज नदारद।

गाँव में सामंतों का दबदबा रहता है। होरी जानता है कि वहाँ उसका गुजारा बड़े लोगों की चापलूसी करने पर ही संभव होगा। वह इस बात पर भी गर्व करता है कि वह जमींदार के पास उठता बैठता है। इस विषय में वह इसकी जरूरत बताते हुए धनिया से कहता है। जब दूसरे के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है। गोबर प्रगतिशील विचारों वाला युवक है। वह जमींदारों के तलुए चाटने में विश्वास नहीं रखता। उसकी प्रवृति में विद्रोह छिपा है। जमींदार की हाजिरी लगाकर लौटे होरी से गोबर उस पर चापलुसी करने का व्यंग्य कसते हुए कहता है।

यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बागि अगर न चुके तो प्यादा आकर गाली सुनाता है। बेगार देनी ही पडती है। नजर नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी को क्यों सलामी करो?

असल में होरी के मन में भी कुछ इसी तरह के विद्रोही भाव छिपे थे। परन्तु उसका दब्बूपन उन्हें बाहर नहीं आने देता था। वह गोबर को जमाने की ऊँच-नीच समझाते हुए कहता है।

सलामी न करें तो क्या करें? भगवान ने जब गुलाम बना दिया है. तो अपना क्या बस। यह इसी सलामी की बरकत है कि द्वार पर मडैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा। घूरे ने द्वार पर खूटा गाड़ा था। इस पर कारिंदों ने दो रूपये दांड लिए थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिंदों ने कुछ नहीं कहा। दूसरा खोदे तो नजर देनी पड़े। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूँ। अशिक्षा और निर्धनता ने होरी को गुलाम प्रवृति वाला बना दिया है। धार्मिक आडंबर और अंधविश्वास उसे सदैव घेरे रहते हैं। यह उसके जड़ धार्मिक संस्कार है, जो उसे अपनी पुरानी पीढ़ी से विरासत में मिले हैं। जब उसका कर्ज मूल से सात गुणा बढ़ जाता है, तो गोबर इसका विरोध करता है, और कुल सत्तर रुपये देने को तैयार होता है। इस पर पंडित दातादीन कहता हैः-

मैं ब्रह्ममण हूँ मेरे रूपये हजम करके तुम चौन न पाओगे।
इस पर प्रेमचंद लिखते हैं- श्मगर होरी के पेट में धर्म की क्रांति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिये के रूपये होते उसे ज्यादा चिंता न होती लेकिन, ब्रह्ममण के रूपये। उसकी एक पाई भी दब गई, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी।

समाज में जब से वर्ण-व्यवस्था लागू हुई थी, तभी से दलितों में धार्मिक जड़ता के संस्कार कूट कूट कर भर दिए गए थे। होरी में भी यह धार्मिक संस्कार इतना प्रबल है कि उपन्यास के सतरहवें परिच्छेद के अंत में ठाकुर साहब के यहाँ से आरती के समय शंख की आवाज आने पर वह बिना एक पैसे के वहाँ जाने से झिझकता है। उसमें फिर से वही मर्यादा की बात उठ खड़ी होती है। समर्थ वर्ग दलितों की स्त्रियों पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता आया है। उसे वह भोग की वस्तु मात्र समझता है। समाज में दलित स्त्री को सदा से ही ओछी नजरों से देखा जाता रहा है। उपन्यास में झुनिया एक पंडितजी के घर दूध पहुँचाने जाती थी। एक दिन पंडिताईन के घर में न होने से पंडितजी ने उस पर कुदृष्टि डाली। इस संदर्भ में झुनिया और गोबर के बीच हुई यह वार्ता दलित स्त्री के प्रति सभ्य जाति के लोगों की ससभ्यता को दर्शाती है।

मैने कहा- तुम्हें दूध लेना हो तो लो, नहीं तो मैं जाती हूँ।
बोला- श्आज तो तुम यहाँ से न जाने पाओगी झुनिया रानी। रोज-रोज कलेजे पर छुरियाँ चलाती हो। आज मेरे हाथ से न बचोगी।
स्त्री चाहे सवर्ण हो या अवर्ण सदा से ही अस्तित्व की लड़ाई लड़ती आई हैं। झुनिया के साथ यहाँ अछूत सिलिया भी अपने अस्तित्व को खोजती देखी जा सकती है। पंडित मातादीन की रखैल के रूप में वह सपनों की दुनिया में खोई रहती है। उसका यह सपना उस समय टूट जाता है. जब वह सहूआईन को खेत के खलिहान से अनाज उठा कर देती है। मातादीन उसे अपने कटु शब्दों से सपनों की दुनिया से धरती पर ले आता है। इससे सिलिया की आँखे भर जाती हैं।

उसे वह दिन याद आए और अभी दो साल भी तो नहीं हुए, जब यही मातादीन उसके तलवे चाटता था। जब उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था। सिलिया जब तक दम में दम हैं, तुझे ब्याहता की तरह रखूँगा।

दलितों में स्वाभिमान की कमी नहीं है। वे भी अपने मान-सम्मान को समझते हैं। मातादीन की करतूत से हताश, सिलिया का पिता हरखू कहता है-

हम आज या तो मातादीन को चमार बनाकर छोडेंगे या उसका और अपना रक्त एक कर देंगें। तुम हमें ब्रह्ममण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें ब्रह्ममण बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह सामर्थ नहीं है. तो फिर तुम भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ-पीओ, हमारे साथ उठो-बैठो । हमारी इज्जत लेते हैं, अपना धर्म हमें दो।

हरखू के ये विद्रोही स्वर दलितों में स्वाभिमान की ज्योति प्रखर करते हैं। बेशक वे दबे हैं, कुचले हैं, पर उनका स्वाभिमान अभी जीवित है और वह धरती के भीतर पड़े गर्म लावे की भाँति उनके हृदय से बाहर आने को बेचौन है। होरी की घर में गाय लाने की इच्छा से विकसित होता यह उपन्यास गरीबी, अकाल, भूखमरी, मजदूरी, छूआछूत और स्त्री अस्मिता के प्रश्नों से जूझता हुआ अंत में आत्मा की मुक्ति हेतु धार्मिक अंधविश्वास के द्वार पर पूर्ण होता है।

धर्म और कर्म से दो-दो हाथ करता होरी उपन्यास का अंत आते-आते किसान से मजदूर बन जाता है। उसका स्वाभिमान अब तक समाज के थपेडों से घायल हो चुका होता है। जेठ की लू उसे मृत्यु शैया तक पहुँचा देती है। अंतिम साँसें गिनते होरी के ये शब्द उसके जीवन संघर्ष की सम्पूर्ण करूण कथा बयां करते हैं-

क्षीण स्वर में बोला, मेरा कहा सुना माफ करना धनिया। अब जाता हूँ । गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रूपये क्रिया-क्रम में जाएँगें।

होरी के मरने पर गोदान का प्रश्न एक बार फिर से उन्हीं जड-धार्मिक संस्कारों को अंकुरित कर देता है, जो शायद अब तक अमर होने का वरदान पा चुके है।

कई आवाजें आई! श्हाँ, गोदान करा दो। अब यही समय है।
धनिया यंत्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ पर रखकर सामने खडे दातादीन से बोली-महाराज, घर में न गाय है न बछिया न पैसा यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

धर्म-अधर्म, कर्मण्यता-अकर्मण्यता, भाग्य-दुर्भाग्य, सुख-दुःख, और मानव-अस्तित्व के सवालों को प्रखर स्वर देता यह उपन्यास होरी को केंद्र में रखकर उस पिछड़े तब के प्रत्येक किसान की करूण व्यथा व्यक्त करता है, जो सदियों से अपने उत्थान हेतु जूझ रहे हैं।
कर्मभूमि

इस उपन्यास में एक पहाड़ी गाँव के अछूतों की पीड़ा का यथार्थ चित्रण है। प्रेमचंद दलितों, किसानों और स्त्रियों की आवाज थे। देखा जाए तो समाज का प्रत्येक वह प्राणी जो शक्तिशाली द्वारा रौंदा जाए वह दलित ही तो है। नारी प्रताड़ना का करूण स्वर उपन्यास के प्रथम भाग के परिच्छेद पाँच में ही देखने को मिलता है। अरमत हरण का यह दृश्य हृदय को झकझकेर कर रख देता है और उन तीन अंग्रेज कुकर्मी सिपाहियों के प्रति पाठक के मन में जहर घोल देता है-

उसी वक्त एक युवती खेत से निकली और मुँह छुपाए लंगडाती, कपड़े सँभालती, एक तरफ चल पड़ी। अबला लज्जावश किसी से कुछ कहे बिना सबकी नजरों से दूर निकल जाना चाहती थी। उसकी जिस अमूल्य वस्तु का अपहरण किया गया था, उसे कौन दिला सकता था?

बेशक मुन्नी दलित नहीं थी, लेकिन उसके साथ घटी उस घटना से दूसरी छोटी जातियों की स्त्रियों की दशा का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। वह इस घटना के बाद टूट गई और अपने घर नहीं लौटी। वह भिखारिन की भाँति इधर-उधर भटकती रही। उसे जब भी कोई उन अंग्रेज सिपाहियों जैसा दिखता तो उसके भीतर का खून खौल उठता। जब उसने बाजार में दो गोरे सिपाहियों को देखा तो उसने छुरी से उन पर हमला कर दिया। पकड़े जाने पर उसके इस जवाब में छिपी पीड़ा को देखा जा सकता है-

आज से छः महीने पहले ऐसे ही तीन आदमियों ने मेरी आबरू बिगाड़ी थी। मैं फिर घर नहीं गई। किसी को अपना मुँह नहीं दिखाया। मुझे होश नहीं कि मैं कहाँ-कहाँ फिरी, कैसे रही, क्या-क्या किया?

स्त्री को धन से ज्यादा अपने स्त्रीत्व को छिपाने की चिंता रहती है। घर में मुखिया के न रहने से महल को भी झोंपड़े में बदलते देर नहीं लगती। पठान के न रहने से बुढ़िया अपनी पोती सकीना के साथ अपने खानदान की आबरू छिपाती नजर आती है। उसकी दरिद्रता का अंदाजा उसके घर की इस हालत को देखकर लगाया जा सकता है-

द्वार एक परदे की दीवार में था। उस पर एक टाट का फटा-पुराना परदा पड़ा हुआ था। एतवार के अंदर कदम रखते ही आँगन था। जिसमें बड़ी मुश्किल से दो खटोले पड़ सकते थे। सामने खपरैल का नीचा सायबान था। सायबान के पीछे कोठरी थी। जो इस वक्त अंधेरी पड़ी हुई थी। सायबान में एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टीन और मिट्टी के दो-चार बर्तन, एक घड़ा और एक मटका रखे हुए थे।

निर्धनता का यह पुरस्कार पिछड़ी जाति के लोगों को जन्म से ही वरदान स्वरूप मिलता आया है। साथ ही समाज के ठेकेदारों ने उनकी शिक्षा के समी मार्ग अवरूद्ध कर दिए थे। दलितों की शिक्षा का अर्थ दासता से उनकी मुक्ति था और वे इसे कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। यदि कोई संयोग से पढ़ने जाता भी था, तो उसे उसकी जाति सूचक शब्द से संबोधित कर आहत किया जाता था और अंत में रजिस्टर से नाम काट कर उसका सपना चूर कर दिया जाता था। शिक्षा का यह भेदभाव उपन्यास के भाग दो, परिच्छेद एक में एक अछूत बालक के शब्दों में देखा जा सकता है-

बालक होठ सिकोड़ कर कहता है, श्कहाँ जाएं, हमें कौन पढ़ाए, मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा हम दोनों को लेकर गए थे। पंडित जी ने नाम लिख लिया, पर हमें सबसे अलग बैठाते थे। सब लड़के हमें चमार-चमार कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटवा दिया।

दलितों में अपनी जाति के प्रति सदैव से ही एक शंका रही है और वह है श्पूर्व जन्म के कर्म का फलश्, जो धर्म के ठेकेदारों द्वारा अपनी धर्म की दुकान चलाने के लिए बनाया गया है। जब पयाग यह कहता है कि हम दलित हैं नीच हैं, गरीब है, तो यह पूर्व जन्म का संस्कार हैं, जिसने जैसे कर्म किए, वैसे फल पा रहा है।

उपन्यास में प्रेमचंद के प्रगतिशील विचारों वाले दलित पात्र भी है, जो पयाग की शंका का समाधान करते हैं। गाँव के चौधरी द्वारा पयाग की शंका दूर करने हेतु कहे गए उसके ये शब्द उसकी विकसित सोच का प्रमाण देते हैं-

यह सब मन को समझाने की बातें हैं बेटा, जिससे गरीबों को अपनी दशा पर संतोष रहे और अमीरों के राग-रंग में किसी तरह की बाधा न पड़े। लोग समझतें रहे कि भगवान ने हमको गरीब बना दिया। आदमी का क्या दोष है।

उपन्यास के दूसरे भाग के परिच्छेद एक में अमरकांत ने मनुष्यता का संदेश देते हुए समानता का पाठ पढ़ाया है। उसका कथन हैं- जो सच्चा है, वह चमार भी हो तो आदर के जोग हैं, जो दगाबाज, झूठा, लम्पट हो, वह ब्रह्ममण भी हो तो आदर के जोग नहीं।

उपन्यास में अमरकांत के नेतृत्व में लगान के खिलाफ विद्रोह करने वाले सभी किसान वस्तुतः रैदास हैं, चमार हैं। बुढिया सलोनी जब हकीम सलीम द्वारा हंटरों से पीटी जाती है तब वह उसके मुँह पर बरसरे आम थूक देती है। प्रेमचंद के ये पात्र सामाजिक भेदभाव और शोषण के प्रति निरंतर संघर्ष करते नजर आते हैं। दलितों का सदियों से ही मंदिर प्रवेश वर्जित था। उपन्यास के तीसरे भाग के परिच्छेद पाँच में मंदिर के बाहर अछूतों की भीड इस परंपरा के लिए लाठी-डंडे खाने को बेताब देखी जा सकती है। भीड़ को रोकने के लिए ब्रहमचारी और समरकांत के ये विचार इस पाषाण परंपरा का परिचय देते हैं-

ब्रहमचारी ने गरजकर कहा, तुम लोग क्या यहाँ बलवा करने आए हो? ठाकुरजी के मंदिर के द्वार पर। एक आदमी ने आगे बढ़ कर कहा- हम फौजदारी करने नहीं आए हैं। ठाकुरजी के दर्शन करने आए हैं।

समरकांत ने उस आदमी को धक्का देकर कहा-तुम्हारे बाप-दादा भी कभी दर्शन करने आए थे कि तुम्हीं सबसे वीर हो?
भीड़ की बातें सुनकर ब्रहमचारी ने उनके सामने वही पुराने नियम दोहरा दिए। ये नियम केवल अछूतों हेतु ही बनाए गए थे, सवर्णों को इनसे छूट थी।

ब्रहमचारी ने आँखे निकालकर कहा, श्जो लोग गाँस मदिरा खाते हैं, निकित कर्म करते हैं, उन्हें मंदिर में नहीं आने दिया जा सकता। लेकिन अब समय बदल चुका है। लोगों की समझ भी बढ़ चुकी है। ब्रहमचारी की बात का शांति कुमार ने बड़े सटीक शब्दों में जवाब दिया-

माँस-मदिरा तो बहुत से ब्रह्ममण, क्षत्रिय, वैश्य भी खाते हैं। आप उन्हें क्यों नहीं रोकते? भंग तो प्रायः सभी पीते हैं। फिर क्यों वे यहाँ आचार्य और पुजारी बने हुए है?

प्रेमचंद जानते थे कि अछूतों को यह लड़ाई अभी और लंबी लड़नी है। एक जद्दोजहद के बाद फिर सब पर लाठियों चली, सिर फूटे और मंदिर से दूर दौड़ा दिए गए। हालांकि उपन्यास का अंत आदर्शवाद की भूमि पर होता है। वास्तविक संघर्ष का अंत भी आदर्श की भूमि पर ही हो तो अधिक सुखदायी होता है। उपन्यास के ये भोलेमाले दलित भी इस सुखदायी अंत हेतु संघर्ष करते हैं और गतिशील रहते हैं।

कायाकल्प
राजसी ठाठबाट और स्वप्नलोकी दुनिया पर आधारित प्रेमचंद के इस उपन्यास में व्यवस्था के बीच पिसते दलितों के शोषण और उन पर चलाए गए दमन चक्र की पीड़ा का मर्म दूर तक खोजा और देखा जा सकता है। राजा प्रजा का पालक होता है। उपन्यास में जगदीशपुर के राजा साहब कहने को तो अपने मत्री से कह देते हैं कि प्रजा से मुफ्त में काम न लिया जाए। वे बेगारी लेने के विरूद्ध है, लेकिन ये सिर्फ कहने की बातें है। वास्तव में उनका खजाना लगभग खाली है और लोक दिखावा वह छोड़ नहीं सकते। इसकी पूर्ति हेतु बेगारी लेनी जरूरी हो जाती है और बेगारी के कोल्हू में सिर्फ दलित ही पिसते हैं। राज्यभिषेक के अवसर पर प्रजा का खून चूसने का यह दृश्य उनकी शोचनीय स्थिति स्पष्ट कर देता है-

तीन महीने तक सारी रियासत के बढ़ई, मिस्त्री, दर्जी, चमार, कहार सब दिल तोड़कर काम करते रहें।
राज्य का खजाना तो पहले ही खाली हो चुका था। लेकिन उसकी काया बदलनी आवश्यक थी। इसलिए लाचारों से बेगारी ली गई। महलों की चमक-दमक में गरीबों का पसीना ही तो लगा रहता है। कौन जानता है, महलों और किलों की नीवं में राजा का पसीना दफन है या फिर मजदूरों का? लिहाजा गरीबों के पसीने से यहाँ का महल तो चमक ही गया।

राजभवन का कलेवर नया हो गया। सारे कस्बे में रोशनी के फाटक बन गए. तिलकोत्सव का विशाल पांडाल तैयार हो गया। चारों तरफ भवन में, पांडाल में, कस्बे में सफाई और सजावट नजर आती थी।

महलों की चमक राज्य की खुशहाली का प्रतीक है, यह बात कतई सच नहीं है। गरीबो की बस्ती का यथार्थ ही उस राज्य की खुशहाली या बदहाली का प्रतीक होता है। बेगारी तक तो ठीक पर बात जब लूट-खसोट की आए तो फिर ये अछूत क्या करें? जबरन वसूली की फितरत एक अप्रत्याशित विद्रोह की संभावना को जन्म देती है। राज्य में भी इसी तरह की वसूली की तैयारी शुरू हो जाती हैं।

हुकम मिलने की देर थी। कर्मचारियों के हाथ तो खुजला रहे थे। वसूली का हुकम पाते ही बाग-बाग हो गए। फिर तो वह अंधेर मचा कि सारे इलाके में कोहराम पड़ गया। आसामियों ने एक नए राजा साहब से दूसरी आशाएँ बाँध रखी थी। यह बला सिर पड़ी तो भन्ना

गए। जब राजा अपने चापलूस मंत्रियों की बातों में आ जाए तो फिर प्रजा से उसकी दूरी बढ़ जाती है। उसे समझना समझाना मुश्किल हो जाता है। वह अपने चारों तरफ की स्थिति को जानते हुए भी अपनी आँखे बंद किए रखता है। उपन्यास का नायक चक्रधर भी उन्हें समझाने में असमर्थ हो जाता है और राज्य की इस भयावह स्थिति से दुःखी होता है। श्वारों तरफ लूट-खसोट हो रही थी। गालियाँ और ठोक-पीट तो साधारण बात थी। किसी के बैल खोल लिए जाते थे, किसी की गाय छीन ली जाती थी, कितनों ही के खेत कटवा लिए गए।

प्रजा चाहे भूखी सोए, लेकिन रईसों के घोड़ों को घास ठीक समय पर मिल जानी चाहिए और जब घास नहीं मिलेगी तो फिर घोड़े दौड़ेगे कैसे? नहीं दौडेगे तो बेगारी न करने पर सामंत के हाथ का हंटर तो अपना काम करेगा ही। यहाँ भी लाचार दलितों की पीठ इस हंटर की मार हेतु तैयार थी।

सहसा मजदूरों के बाड़े से रोने-चिल्लाने की आवाजें आने लगी। किसी कैंप में घास न थी और ठाकुर हरिसेवक हंटर लिए चमारों को पीट रहे थे। मुंशी वज्रधर की आँखे मारे क्रोध के लाल हो रही थी। कितना अनर्थ है सारा दिन गुजर गया और किसी कैंप में घास नहीं पहुँची। चमारों का यह हौंसला ऐसे बदमाशों को गोली मार देनी चाहे।

बिन भोजन तो भजन भी नहीं होता और बिन भोग के भगवान भी कहाँ जागते हैं? यही स्थिति बाडे के मजदूरों की थी। खाली पेट में दहकती आग होती है. जो शब्दों के माध्यम से बाहर आती है। इस बातचीत में उनकी पीड़ा को देखा जा सकता है-

मुंशी,- बदमाश झूठ बोलता है, सूअर, डेमफूल, ब्लाडी, रैसकेल, शैतान का बच्च्वा। अभी पोलो खेल होगा, घोड़े बिना खाए कैसे दौड़ेंगे?

एक युवक ने कहा- हम लोग तो बिना खाए आठ दिन से घास दे रहे हैं, घोड़े क्या बिना खाए एक दिन भी न दौडेगें? क्या हम घोड़े से भी गए गुजरे ?

इस युवक की बात में सत्य छिपा था। खाली पेट की आग से तो श्सद्गतिश् का दुक्खी भी बेगारी करते-करते दुनिया छोड़ गया था, हंटरों की मार से इन अछूतों के दब्बूपन की खाल उघड़ चुकी थी और हड्डियों से विद्रोह का स्वर फूटने को बेसब्र था।

एक चमार बोला, हम यहाँ काम करने आए है, जान देने नही आए हैं। एक तो भूखों मरे, दूसरे लात खाएँ। हमारा जन्म इसलिए थोड़े ही हुआ है? जिससे चाहे काम करवाइए। हम घर जाते हैं। उपन्यास में प्रेमचंद के ये अछूत अपने जन्म पर सवाल उठाते हुए वर्ण-व्यवस्था पर कुठाराघात करते हैं। उन्हें क्या मालूम कि उन्हें इस व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर रखा ही इसलिए गया था कि ये बेगारी करें और दास बने रहे। लेकिन कोई भी व्यवस्था सदैव व्यवस्थित बनी रहे, यह जरूरी नहीं। एक अछूत ने तो इस व्यवस्था से बाहर आने की इच्छा जाहिर कर दी।

चमार- आपको अख्तियार हैं, जो चाहे करें। हमें अब इस राज्य में नहीं रहना है। कुछ हाथ-पाँव थोड़े ही कटवाए बैठे हैं। अगर कहीं ठिकाना न लगेगा, तो मिरिच डमरा तो है ही।

पिछली सदी में अंबेडकर के आहवान पर सैकड़ों दलितों का बुद्ध की शरण में आश्रय लेना, शायद इसी वर्ण-व्यवस्था का कुपरिणाम था। परंतु इस व्यवस्था की जड़े इतनी गहरी हैं कि चाहे जहाँ शरण ले लो, इसकी हद से बाहर निकलना असंभव है। रस्सी को लगातार बल लगाते रहने से वह टूट जाती है। उपन्यास में अछूतों के सब्र का बाँध भी टूट गया और उन्होंने विद्रोह का बिगुल बजा दिया।

एक मजदूर, श्कोई चिंता नहीं। मर-मरकर जीने से एक बार मर जाना अच्छा हैं। मारो, आगे बढ़ो, क्यों हिम्मत छोड देते हों?
विद्रोह हुआ, गोलियाँ चली। सैकड़ों अछूत मारे गए। उनके पेट खाली थे, लेकिन बंदूके खाली नहीं थी. उनमें अभी भी कारतूस भरे हुए थे और राजमहल की चमक बरकरार थी। जो दलित मरे वे तो उस लोक चले गए, लेकिन जो जीवित रह गए उनके भीतर सुलगती विद्रोह की तपिश उनके स्वाभिमान को जीवित रखने हेतु पर्याप्त थी।

प्रेमाश्रम

जमींदार परिवारों के आसपास घूमती उपन्यास की इस कहानी में निर्धन और पिछड़े किसानों के जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्रण है। लखनपुर गाँव में कुर्मि. ठाकुर और कुछ अन्य जातियों के लोग रहते हैं।

सभी सामंती शोषण के शिकार हैं। बेशक वे अशिक्षित हैं, लेकिन वे हाकिमों के चरित्र को भलि भाँति समझते हैं। इस संदर्भ में उनकी इस वार्ता में उनका जीवन अनुभव स्पष्ट देखा जा सकता है-

मनोहर ने कहा, श्भाई हाकिम तो अंग्रेज, अगर ये न होते, तो देश वाले हाकिम तो हम लोगों को पीसकर पी जाते। लखनपुर के अधिकतर किसान दलित हैं और लगान का बोझ ढोने के साथ-साथ बेगारी से भी दो-दो हाथ करते हैं। जरा सी कोताही होने पर उन्हें जमीदार के कोडे खाते भी देखा जा सकता है। दुखरन के ये विचार उनकी पीडा व्यक्त करने में सक्षम हैद्द कहते हैं विद्या से आदमी की बुद्धि सुधर जाती है, पर यहाँ उलटा ही देखने में आता है। यह हाकिम और अमले तो सब पढ़े-लिखें विद्यान हैं, लेकिन किसी को दया-धर्म का विचार नहीं आता।

पढ़े-लिखे हाकिमों के बारे में अपनी बात को स्पष्ट करते हुए दुखरन फिर कहता है-
अरे हम तो मूर्ख, गवार, अनपढ़ हैं। वह लोग तो विद्यावान हैं। उन्हें नहीं सोचना चाहिए कि ये गरीब लोग हमारे ही भाईबंद हैं। हमें भगवान ने विद्या दी है तो इन पर निगाह रखे। इन विद्यावानों से तो हम मूर्ख ही अच्छे हैं। अन्याय सह लेना तो अन्याय करने से अच्छा है।

दुखरन के विचारों में लाचारी और भय छिपा प्रतीत होता है। वह अन्याय सहने की बात पर बल देता है। उसके इसी भय ने तो आज तक उसकी जाति के लोगों को सामंतों के पाँवों तले दबाए रखा है। मनोहर की प्रवृति में विद्रोह की चिंगारी छिपी है। वह एकता के महत्व को समझता है। उसे मालूम है कि सामंत की ताकत उसके कारिंदों और हाकिमों पर निर्भर करती है। वह यह भी जानता है कि जब तक लोगों में फूट रहेगी, तब तक सामंती पंजे उन्हें जकड़े रहेंगे। अपनी बात स्पष्ट करते हुए वह कहता है-

न विद्या का दोष है, न देश का अभाग। यह हमारी फूट का फल है।
धरती का सीना चीरकर अनाज पैदा करने वाले ये गरीब और छोटी जाति के किसान अपने खेतों को मौसम की मार और लगान के साथ बेदखली से बचाते हुए जूझते नजर आते हैं। मनोहर के ये शब्द उन सभी की स्थिति व्यक्त करने को पर्याप्त है-

अभी रब्बी में महीनों की देर है और घर अनाज का दाना नहीं हैं। गुड़ एक सौ रूपये से कुछ ऊपर ही हुआ है, लेकिन बैल बैठाऊं हो गया है। डेढ़ सौ लगेंगे तब कहीं एक बैल आएगा।

गाँव के अधिकतर लोगों की पारिवारिक स्थिति नाजुक है। वे अनाज तो भरपूर उगाते हैं, पर दाने पर्याप्त मात्रा में घर तक नहीं पहुँच पाते। जमींदार के कारिंदों द्वारा खलिहान से ही अनाज, लगान के रूप में उठा लिया जाता है। मनोहर के घर की यह शोचनीय स्थिति गाँव के सभी किसानों के घरों की स्थिति को प्रतिबिंबित करती है।

चौके में मिट्टी के तेल का दिया जल रहा था। लेकिन घर में इतना धुआं भरा हुआ था कि छत काली हो गई थी। जिससे उसका प्रकाश मध्यम पड़ गया था। उसकी पत्नी बिलासी ने पीतल की थाली में बथुए का साग और जौं की मोटी मोटी रोटियाँ परोस दी। मनोहर इस प्रकार खाने लगा मानों कोई दवा हो। इतनी ही रूचि से वह घास भी खाता है।

गाँव में बेगारी की प्रथा जोरों पर थी। बिना बेगारी के सामंती शान जो कम हो जाती है। जमींदार के पिता की बरसी पर घी इकट्टा करने की जिम्मेदारी गिरधर को दी गई थी। घी का बाजार भाव दस रूपये छटॉक था, जबकि गरीबों से जबरन एक रूपए छटॉक खरीदने की व्यवस्था की गई। जमीन से बेदखली का भय उन लाचारों को बेगारी के सम्मुख आत्मसर्मपण करने को विवश कर देता है। इस संबंध में उनकी यह बातचीत इसका जीता जागता प्रमाण है-

सुक्खु ने सिर नीचा करके कहा, जितना चाहे दे दो, तुम्हारी जमीन में बसे हुए है. भाग के कहाँ जाएँगे।
हर चीज की हद होती है। सहनशीलता की भी हद होती है। घी की व्यवस्था न कर पाने से मनोहर को जमींदार ज्ञानशंकर से लज्जित होना पड़ा।

जमींदार के कटु शब्द उसके सीने पर खंजर की भाँति गड़ गए थे। उसके सब्र का बाँध टूट गया था। उसकी स्थिति मानों कुछ यूँ हो गई थी-

एक दीन मर्माहक पक्षी था, जो घावों से तड़प रहा था। वह अपशब्द उसे एक क्षण भी नहीं भूलते थे। वह ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता था।

दासता से मुक्ति के स्वर मनोहर के बेटे बलराज में भी दिखाई देते हैं। वह नई पीढ़ी का युवा है। उसके विचार प्रगतिशील हैं। वह शिक्षा का महत्व जानता है। वह क्रांति का अग्रणी भी बन सकता है। हाकिम के चपरासियों द्वारा लश्कर हेतु मुफ्त में दूध माँगे जाने पर उसका विद्रोह कुछ यूँ सामने आता है। मेरी भैसें बहुत दुधार हैं, मनभर दूध देती हैं। लेकिन बेगार के नाम से छटाकभर भी न देंगी।–

प्रेमचंद दासता से मुक्ति का ध्वज नौजवानों को थमाना चाहते थे। इस हेतु उन्होंने बलराज का चयन किया। उसमें जहाँ शक्तिशाली सामंतों और हाकिमों की आँखों में निर्भयता से देखने का साहस हैं. वहीं अपने हलवाहे रंगी चमार के प्रति बिलासी से कहें उसके इन शब्दों में करूणा भी देखी जा सकती है-

रंगी कोई बेगार का आदमी नहीं है, घर का आदमी है। वह मुँह से चाहे न कहे, पर मन में अवश्य कहता होगा कि छाती फाड़कर काम में करूँ और मूँछों पर ताव देकर खाएँ ये लोग। ऐसे दूध-घी खाने पर लानत है।

निष्कर्ष

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में दलित विमर्श सामाजिक यथार्थ और परिवर्तन की चेतना का महत्वपूर्ण आयाम है। उन्होंने जातिगत विषमता और सामाजिक अन्याय को केवल चित्रित ही नहीं किया, बल्कि उसके विरुद्ध नैतिक प्रतिरोध का स्वर भी प्रस्तुत किया। गोदान में ग्रामीण समाज की संरचना के भीतर छिपे भेदभाव और शोषण का चित्रण है, जबकि रंगभूमि में शोषित वर्ग की अस्मिता और संघर्ष को केंद्रीय स्थान मिला है। प्रेमचंद का दृष्टिकोण मानवीय और प्रगतिशील है, जो समाज को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करता है। उन्होंने यह स्थापित किया कि सामाजिक समानता और न्याय के बिना किसी भी सभ्यता का विकास अधूरा है। यद्यपि बाद के काल में दलित साहित्य ने स्वतंत्र स्वर प्राप्त किया, फिर भी प्रेमचंद के उपन्यासों में उसकी वैचारिक नींव स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस प्रकार प्रेमचंद का उपन्यास-साहित्य आज भी सामाजिक समरसता, समानता और न्याय की स्थापना के संदर्भ में प्रासंगिक और प्रेरणादायक बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हंसराज रहबर, प्रेमचंद जीवन कला और कृतित्व, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण, वर्ष 2006, पृ. 90
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण वर्ष 1988, पृ. 113
3. कमर रईस, प्रेमचंद की विचार यात्रा, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष 1995, पृ. 5
4. शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में, आत्मा राम एंड संस, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष 1991, पृ. 113
5. कमर रईस, प्रेमचंद की विचार यात्रा, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष 1995, पृ. 3
6. शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में, आत्मा राग एंड संस, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष 1991, पृ.264
7. प्रेमचंद, प्रेमचंद के विचार, भाग एक, सरस्वती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण वर्ष- 1982, पृ. 33
8. शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में, आत्मा राम एंड संस, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष 1991, पृ. 75
9. अमृतराय, प्रेमचंद, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष-2005, पृ. 45
10. अमृतराय, मंगलसूत्र व अन्य रचनाएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष 2005, पृ. 80
11. अमृतराय, प्रेमचंद, कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, वर्ष 2005, पृ. 78
12. हंसराज रहबर, प्रेमचंद जीवन कला और कृतित्व, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण, वर्ष 2006, पृ. 51
13. कमर रईस, प्रेमचंद की विचार यात्रा, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष 1995. पृ. 5
14. प्रेमचंद, गोदान, प्रखर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण वर्ष 2013. पृ. 257
15. कार्ल माकर्स, कम्युनिस्ट घोषणापत्र, राहुल फाऊन्डेशन, दुर्गापुर, संस्करण वर्ष- 2008, पृ. 49